International Journal For Technological Research in Engineering
Volume 12 Issue 2 October-2024 ISSN (online) 2347-4718

''शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की शिक्षा पर पड़ने वाले जैन दर्शन के प्रभाव का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अध्ययन''

[1]ज्ञान प्रकाश मिश्रा, [2]डॉ. सुनिल कुमार
[1]शोधार्थी, [2]प्रोफेसर
शिक्षा विभाग
लॉर्ड्स विश्वविद्यालय
अलवर–भिवाड़ी हाईवे, चिकानी, अलवर

शोध सारांश :–

जैन धर्म वर्तमान संदर्भ में जितना प्रासंगिक है उतना शायद पहले भी नहीं था । जैन धर्म का मूलमंत्र जिओं और जीने दो है । आज के इस हिंसक, भोगविलास और इन कारणों से प्रदूषित युग में जैन धर्म सम्पूर्ण विश्व को अहिंसक जीवन शैली, भोगो के कारण होने वाले नुकसान और पर्यावरण रक्षा करना सीखाता है । अणुबम के डर का निवारण जैन धर्म के अणुवर्तो से हो सकता है । दूसरे धर्म सिर्फ अपने अनुयायी या सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण की बात करते है जबकि जैन धर्म समस्त जीवसृष्टि के कल्याण की रक्षा की बात करता है ।

इस संसार में सुख और दुख को समान रूप से देखते हुए भोगते हुए इनसे मुक्त होने का मोक्ष पाने का प्रयत्न करते रहा है यही जैन धर्म कहता है ।

भारत को विश्व का आध्यात्मिक गुरू कहा जाता है। विभिन्न धर्म एवं आध्यात्मिक गुरूओं ने समय–समय पर अपने आदर्श प्रस्तुत किये हैं।

जैन धर्म व्यावहारिक जीवन से आबद्व है। जैन धर्म मानव प्राणियों के शुद्ध आचरण से सम्बन्ध रखता है। यह अवलोकन किया गया है कि जैन धर्म में पापमोचन की आदर्शवादी व्यवस्था है। इसलिए इसे विश्व के प्राचीनतम धर्मो में से एक धर्म माना गया है। विश्व की काल चक्रीय व्यवस्था पर जैन धर्म का विश्वास है। इस प्रकार विश्व आरंभ रहित –अन्त रहित तथा रचियता रहित है। एक समय था जब जैन धर्म को बौद्ध धर्म की ही एक शाखा समझ लिया गया था। किन्तु अब यह भ्रान्ति दूर हो चुकी है और नई खोजों के फलस्वरूप यह प्रमाणित हो चुका है कि जैन धर्म बौद्ध धर्म से न केवल एक पृथक और स्वतन्त्र धर्म है अपितु उससे बहुत प्राचीन भी है। यह भ्रान्ति दूर करने का श्रेय प्रसिद्ध जर्मन विद्वान डॉ. हर्मन याकोबी को प्राप्त हैं उन्होने अपनी जैन सूत्रों की प्रस्तावना में इस पर विस्तृत विचार किया है। वे लिखते हैं :–

''इस बात से अब सब सहमत हैं कि नातपुत्र जो महावीर अथवा वर्धमान के नाम से प्रसिद्ध है, बुद्ध के समकालीन थे। बौद्ध ग्रन्थों में मिलने वाले उल्लेख हमारे इस विचार को दृढ़ करते हैं कि नातपुत्र से पहले भी निर्ग्रन्थों का अस्तित्व था जो आज जैन अथवा आर्हत के नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार अब जैन धर्म का आरम्भ काल सुनिश्चित रीति से ईस्वी सन् से 800 वर्ष पूर्व मान लिया गया है।''

उत्तराध्ययन :– सूत्र के प्राक्कथन में डॉ. चार्पेन्टियर लिखते हैं:–

''हमें स्मरण रखना चाहिए कि जैन धर्म भगवान महावीर से प्राचीन है और महावीर के आदरणीय पूर्वक पार्श्वनाथ निश्चित रूप से एक वास्तविक व्यक्ति के रूप में विद्यमान थे। अतः जैन धर्म के मूल सिद्धान्त भगवान महावीर से बहुत पहले से निर्धारित हो चुके थे।''

कुछ विद्वान भगवान पार्श्वनाथ को जैन धर्म का संस्थापक मानते हैं, जबकि कुछ विद्वान उनसे पहले भी जैन धर्म का अस्तित्व मानते हैं।

उदाहरण के लिए :– डॉ. हर्मन याकोबी और प्रसिद्ध भारतीय दार्शनिक सर राधाकृष्णन के मत उल्लेखनीय हैं।

डॉ. याकोबी के अनुसार :– ''इंडियन एंटिक्वेरी की जिल्द दो के पृष्ठ 163 पर लिखते हैं कि इसका कोई भी सबूत नही हैं कि पार्श्वनाथ जैन धर्म के संस्थापक थे। जैन परम्परा प्रथम तीर्थकर ऋषभदेव को जैन धर्म का संस्थापक मानने में एकमत हैं इस मान्यता में ऐतिहासिक सत्य की संभावना है।''

हजारों शताब्दियों पुराने जैन धार्मिक ग्रन्थों में विभिन्न प्रकार के सजीव, जैविक प्राणियों की विजातियों तथा उनके प्रति अहिंसक व्यवहार का विस्तृत वर्णन है। जीवन मृत्यु तथा पुनर्जन्म का अन्त होने, चक्र से मुक्ति अर्थात् मोक्ष प्राप्ति ही जैन धर्म का मुख्य उद्देश्य है। जीवन मुक्त को सिद्ध कहा गया है।

समस्या की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :–

जैन संस्कृति की मूल अवधारणायें मानवतावाद के विकास में सदैव कार्यकारी रही है। उन्हें आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र भ्रष्टाचार दूर कर सरोदयावाद और अहिंसावादी विचारधारा को प्रचारित करने का अथक्य प्रयत्न किया, धनोपार्जन के सिद्धान्तों को न्यायवक्ता की ओर मुड़ा, मुख प्राणियों की वेदना को अहिंसा की चेतनादायी संजीवनी से दूर किया, साकाहार पर पूरा बल देकर पर्यावरण की रक्षा की और सामाजिक विषमता की सर्वभक्षी अग्नि को समता के शीतल जल और मन बयार से शांत किया। जीवन के हर अंग में अहिंसा और मद्य, माँस, छूत आदि जीवनघाती व्यसनों से मुक्ति के महत्व को प्रदर्शित कर मानवता के संरक्षण में जैन संस्कृति ने सर्वाधिक योगदान दिया है। यह उसकी गहन चरित्र–व्रतों में अनर्थ दण्डव्रत को जोड़ कर उसमें और भी महनी प्रतिष्ठा का काम किया है। पर्यावरण को सुरक्षित रखने का भी उत्तरदायित्व जैनों ने अच्छी तरह निभाया है। उसकी वैज्ञानिक दृष्टि भी उल्लेखनीय रही हैं।

यह तथ्य जैन साहित्य से परिपुष्ट हो जाता है इसलिए हम यहाँ जैनाचार्यों द्वारा लिखित साहित्य का संक्षिप्त विवरण दे रहे हैं। जैन चिन्तकों का यह साहित्यिक योगदान प्रभूत मात्रा में है।

धर्मे स्थितोऽसि विमले शुभ बुद्धिसत्व

सर्वज्ञतामभिलषन् हृदयेन साधो।

मह्यंशिरः सृज महाकरुणाग्रचेता

मह्य ददस्वं मम तोषकरो भवाद्य।।

जिस सत्य के लिए रूपावती ने एक नवजात शिशु की प्राण रक्षा अपने दोनों स्तनों को काटकर की वह सत्य न राज्य के लिए न भोगों के लिए न इन्द्रत्व के लिए, न चक्रवर्ती पद के लिए और न अन्य किसी इच्छा से ही प्रेरित हुआ था, उस सत्य के पीछे एक ही भावना थी–अप्राप्त सम्यक् संबोधि कराऊ, जो इन्द्रिय लोलुप है, उन्हें इन्द्रिय–निग्रह और आत्मदमन सिखाऊँ, जो अमुक्त है, उन्हें मुक्त करूँ, जो निस्हाय है, उन्हें आश्रय दूँ और दुखी है उनके दुःखो की निवृत्ति करूँ।

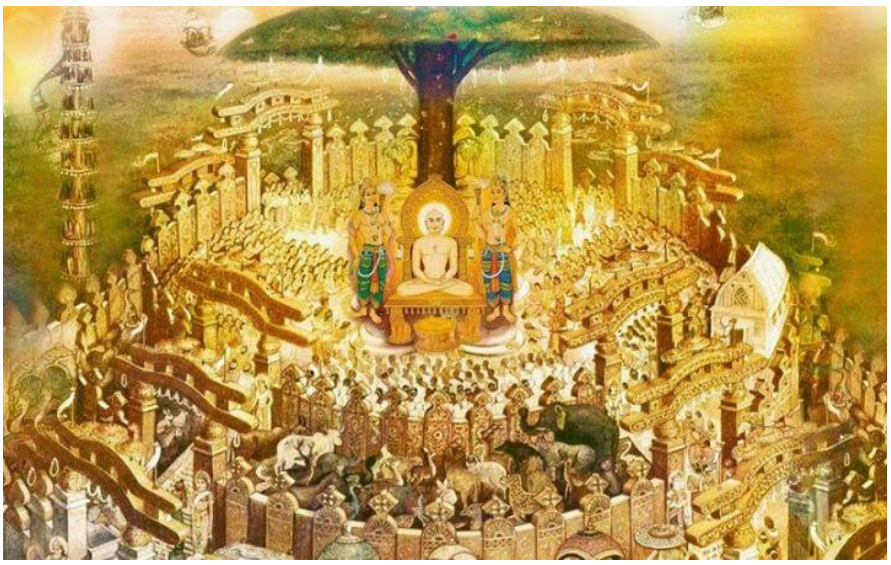

इसी सत्य से प्रेरित होकर और दुःखी मनुष्य के अर्तनाद को न सह सकने के कारण बोधिसत्व सिद्धार्थ सम्यक–संबुद्ध होकर घर–घर गाँव–गाँव पदचारिका करते रहे। सत्य, करुणा, मैत्री, समता, अहिंसा और बन्धुता मानवता की मूर्ति गौतम बुद्ध ने जिस मार्ग को चलाया, वह सारनाथ से सभ्य जगत की सीमाओं को छूकर बौद्ध–दर्शन के महनीय धर्मों में अन्यतम है। वे संसार की दिव्य विभूति थे। महामहिमाशाली गुणों से वे विभूत थे। उन्होंने समय की परिस्थिति के अनुरूप जिस धर्म का चक्र प्रवर्तन किया, वह इतना सजीव, इतना व्यवहारिक तथा इतना मंगलमय था कि आज ढ़ाई

हजार वर्षों के अनन्तर भी उसका प्रभाव मानव समसाज पर न्यून नहीं हुआ। एशिया के केवल एक छोटे पश्चिमी भाग को छोड़ कर इस विस्तृत भूखण्ड पर इसकी प्रभुता अतुलनीय है। बुद्धधर्म ने करोड़ों प्राणियों का मंगल साधन किया है और आज भी वह उनके आत्यन्तिक कल्याण की साधना में लगा हुआ है। पाश्यात जगत के चिन्ताशील व्यक्तियों पर इस धर्म तथा दर्शन का महत्वपूर्ण प्रभाव पूर्वकाल में पड़ा और आज भी पड़ रहा है।

- ✓ **जैन दर्शन अनीश्वरवादी है** – जैनों का अनीश्वरवाद इन युक्तियों पर आधारित है – ईश्वर के अस्तित्व की सिद्धी न तो प्रत्यक्ष और न अनुमान से ही हो सकती है । ईश्वर के लिए जो गुण कल्पित है, वे युक्तिपूर्वक नहीं है ।
- ✓ **जैन ईश्वरवादी नही तो तीर्थकरवादी है** – जैन मत को मानने वाले तीर्थंकरों में इन सभी गुणों के दर्शन करते है जो ईश्वर में पाये जाते हैं । तीर्थंकर को अर्हन्त नाम से भी जाना जाता है । जो क्रोध आदि शत्रुओं का नाश करते है, वे अर्हनत होते है अर्थात् सर्वज्ञ है । जिसने राग द्वेष को जीत लिया है जो तीनों लोकों में पूज्य है । तीर्थंकर को ही ईश्वर माना जाता है ।
- ✓ **पंच मरमेष्टि** – अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य उपाध्याय एवं सर्व साधु–साध्वी इनके लिए पूज्य है । णमोकार मंत्र इनकी पूजा का ही महामन्त्र है ।
- ✓ **आत्मा** – जैन–दर्शन में आत्मा में परमात्मा के होने की दक्षता मानी जाती है । उसमें लगी राग द्वेश की बुराइयों को दूर कर निर्मल परमात्मा स्वरूप को प्राप्त कर सकता है । स्वयं प्रकाशमान ईश्वर का साक्षात्कार कर सकता है । प्रत्येक चेतन में परम तत्व विद्यमान है । जैन दर्शन के अनुसार ज्ञान प्रकाश के समान है ।

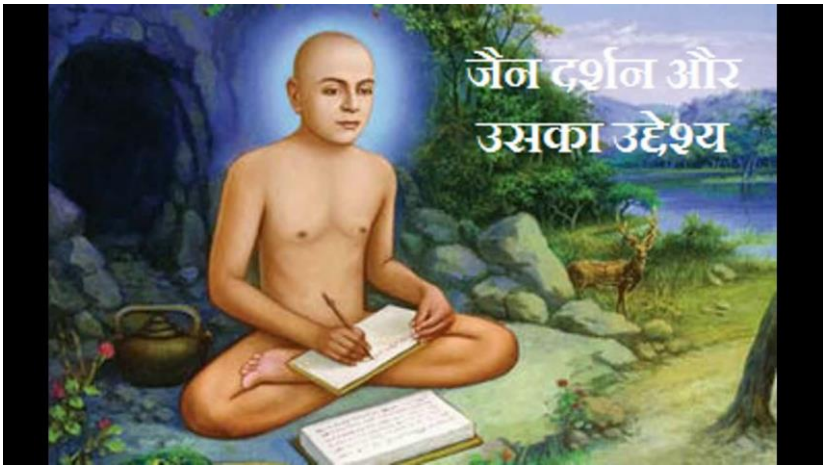

जीओं और जीने दो की भावना का विकास – जैन दर्शन के अनुसार मनसा वाचा कर्मणा अर्थात् मन, वचन तथा कर्म तीनों प्रकार की हिंसा से बचना चाहिए । शिक्षा का मुख्य उद्देश्य अहिंसा की भावना का प्रसार करना है, जिसका विकास विद्यार्थी जीवन से ही प्रत्येक बालक को करना चाहिए ।

नैतिकता के विकास पर बल – जैन दर्शन के अनुसार बालक को शिक्षा के माध्यम से उच्च नैतिकता का विकास करना चाहिए । इसीलिए पंच महाव्रत एवं त्रिरत्न के पालन पर बल दिया गया है ।

पंच महाव्रत – सत्य (सत्य बोलना), अहिंसा (हिंसा न करना), आसेय (चोरी न करना), ब्रह्माचर्य (इन्द्रिय निग्रह करना) तथा अपरिग्रह (धन का संग्रह न करना) को माना गया है ।

त्रिरत्न –

* सम्यक् दर्शन
* सम्यक् ज्ञान
* सम्यक् चरित्र को माना गया है ।

जीवन में कर्म की प्रधानता पर बल देना – व्यक्ति जैसा कर्म करेगा वैसा ही फल प्राप्त होगा । अतः बालकों को कर्म प्रधान शिक्षा दी जानी चाहिए। ताकि वह पाप कर्म से बच सके और सुकर्म करने की ओर प्रेरित हो सके।

कठोर जीवनयापन पर बल – जैन दर्शन में मोक्ष प्राप्त के लिए कठिन तप, व्रत, उपवास और संयमित जीवन में ही संभव है । जीवन बन्धनहीन तभी हो सकता है जबकि इसे भूख, प्यास, निद्रा, मैथुन, भय आदि रोग न सताये। अतः बालक को कठोर जीवनयापन की शिक्षा प्रदान करना ही जैन–दर्शन का मुख्य उद्देश्य है ।

व्यक्ति का सर्वांगीण विकास – जैन दर्शन के अनुसार सम्यक् ज्ञान में व्यक्ति का ज्ञानात्मक, सम्यक् दर्शन में भावात्मक और सम्यक् चरित्र में आत्मिक विकास की बात निहित है । इन तीनों के विकास से ही व्यक्ति का सर्वांगीण विकास संभव है।

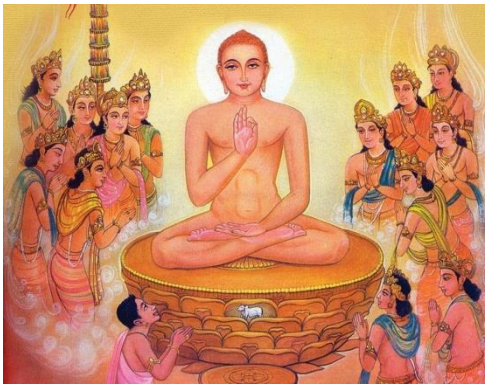

जैन द र्शन के तीर्थकरों व मूल्यों के विचार भवेताम्बर एवं दिगम्बर परम्परा के मुनियों ने यह द र्शन दिया कि संसार के दुखी प्राणियों के दुख का निवारण सयंमी बनकर किया जा सकता है। इसलिए पानी छानकर पीना, रात्रि के भोजन न करना। देव द र्शन अश्ट मूल गुणों का परिपालन करना, निर्व्यसनी जीवन, समन्वयक् दृश्टि कुछ आदि ऐसे नियमों का पालन किया गया है जिससे साधक संयमी बनकर अहिंसक समाज की रचना कर सके और जीवन का सर्वांगीण विकास करना संयम का परम उद्दे य रहा है और इसी संयम के माध्यम से दुखों का अन्त किया जा सकता है।

जैन धर्म व्यावहारिक जीवन से आबद्व है। जैन धर्म मानव प्राणियों के शुद्ध आचरण से सम्बन्ध रखता है। यह अवलोकन किया गया है कि जैन धर्म में पापमोचन की आदर्शवादी व्यवस्था है। इसलिए इसे विश्व के प्राचीनतम धर्मो में से एक धर्म माना गया है। विश्व की काल चक्रीय व्यवस्था पर जैन धर्म का विश्वास है। इस प्रकार विश्व आरंभ रहित –अन्त रहित तथा रचियता रहित है।

एक समय था जब जैन धर्म को बौद्ध धर्म की ही एक शाखा समझ लिया गया था। किन्तु अब यह भ्रान्ति दूर हो चुकी है और नई खोजों के फलस्वरूप यह प्रमाणित हो चुका है कि जैन धर्म बौद्ध धर्म से न केवल एक पृथक और स्वतन्त्र धर्म है अपितु उससे बहुत प्राचीन भी है। यह भ्रान्ति दूर करने का श्रेय प्रसिद्ध जर्मन विद्धान डॉ. हर्मन याकोबी को प्राप्त हैं उन्होने अपनी जैन सूत्रों की प्रस्तावना में इस पर विस्तृत विचार किया है। वे लिखते हैं :–

''इस बात से अब सब सहमत हैं कि नातपुत्र जो महावीर अथवा वर्धमान के नाम से प्रसिद्ध है, बुद्ध के समकालीन थे। बौद्ध ग्रन्थों में मिलने वाले उल्लेख हमारे इस विचार को दृढ़ करते है कि नातपुत्र से पहले भी निर्ग्रन्थों का अस्तित्व था जो आज जैन अथवा आर्हत के नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार अब जैन धर्म का आरम्भ काल सुनिश्चित रीति से ईस्वी सन् से 800 वर्ष पूर्व मान लिया गया है।''

उत्तराध्ययन :– सूत्र के प्राक्कथन में डॉ. चार्पेन्टियर लिखते हैः–

''हमें स्मरण रखना चाहिए कि जैन धर्म भगवान महावीर से प्राचीन है और महावीर के आदरणीय पूर्वक पार्श्वनाथ निश्चित रूप से एक वास्तविक व्यक्ति के रूप में विद्यमान थे। अतः जैन धर्म के मूल सिद्धान्त भगवान महावीर से बहुत पहले से निर्धारित हो चुके थे।''

कुछ विद्धान भगवान पार्श्वनाथ को जैन धर्म का संस्थापक मानते हैं, जबकि कुछ विद्धान उनसे पहले भी जैन धर्म का अस्तित्व मानते हैं।

उदाहरण के लिए :– डॉ. हर्मन याकोबी और प्रसिद्ध भारतीय दार्शनिक सर राधाकृष्णन के मत उल्लेखनीय हैं।

डॉ. याकोबी के अनुसार :– ''इंडियन एंटिक्वेरी की जिल्द दो के पृष्ठ 163 पर लिखते हैं कि इसका कोई भी सबूत नही हैं कि पार्श्वनाथ जैन धर्म के संस्थापक थे। जैन परम्परा प्रथम तीर्थकर ऋषभदेव को जैन धर्म का संस्थापक मानने में एकमत हैं इस मान्यता में ऐतिहासिक सत्य की संभावना है।''

डॉ. सर राधाकृष्णन :– कुछ विशेष जोर देकर इंडियन फिलॉसफी की जिल्द एक के पृष्ठ 287 पर लिखते हैं कि–

''जैन परम्परा ऋषभदेव से अपने धर्म की उत्पत्ति होने का कथन करती है, जो बहुत सी शताब्दियों पूर्व हुए हैं। इस बात के प्रमाण पाए जाते हैं कि ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दी मे प्रथम तीर्थकर ऋषभदेव की पूजा होती थी। यजुर्वेद में ऋषभदेव अजितनाथ और अरिष्टनेमि तीर्थंकरों के नामों का निर्देश है। भगवत पुराण भी इस बात का समर्थन करता है कि ऋषभदेव ही जैन धर्म के संस्थापक थे।

जैनेत्तर साहित्य तथा उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री से भी इस बात की पुष्टि होती है कि जैन परम्परा के अनुसार कालान्तर में रीति–रिवाज तथा नीतियों का विकास किया गया। विकासशील गतिविधियों के कारण ही मनुषों का नाम कुलकारस पड़ गया। जैन साहित्य में केवल चौदह कुलकारसों का वर्णन है। नभीराय अंतिम कुलकारस थे। नभीराय का

पुत्र ऋषभदेव था जा प्रथम तीर्थकर अर्थात् जैन धर्म के संस्थापक थे। वास्तविकता में ऋषभदेव को तीर्थंकर अथवा जिन (वह व्यक्ति जिसने अपनी विषय वासनाओं या समस्त इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली हो) बताया है। जैन दर्शन 24 तीर्थंकरों की शिक्षाओं का संकलन है। लगभग 500 वर्ष पुराने हिन्दुओं के प्राचीनतम धार्मिक ग्रन्थ ऋग्वेद में ऋषभदेव के नाम का उल्लेख है। 24 तीर्थंकरों के चक्र में भगवान महावीर अंतिम तीर्थंकर है। जिनका जीवन काल ईसा पूर्व 599 से 527 अवधि में माना जाता है। बिहार राज्य में स्थित वैशाली नगर के कुण्डग्राम में भगवान महावीर का जन्म 600 ईसा पूर्व चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन हुआ था उनके पिता का नाम सिद्धार्थ तथा माता का नाम त्रिशला था।

महावीर के समय यज्ञादिक का बहुत जोर था और यज्ञों में पशु–बलिदान बहुतायात से होता था। बेचारे मूक पशु धर्म के नाम पर बलिदान कर दिए जाते थे और –

''वैदिकी हिंसा, हिंसा न भवतिः।''

की संज्ञा दे दी जाती थी। करूणासागर महावीर के कानों तक भी उन मूक पशुओं का चीत्कार पहुँचा और राजपुत्र महावीर का हृदय उनकी रक्षा के लिए तड़प उठा। धर्म के नाम पर किए जाने वाले किसी भी कृत्य का विरोध कितना दुष्कर है? यह बताने की आवश्यकता नहीं। किन्तु महावीर तो महावीर थे। 30 वर्ष की उम्र में ही समस्त सांसारिक बन्धनों का त्याग कर वन में साधना करने चले गए। बारह वर्षों तक उन्होने कठिन तपस्या की। परिणाम स्वरूप उनको दिव्य कैवल्य प्राप्त हुआ। तदुपरान्त तीस वर्षों तक उन्होंने अनेक देश–देशान्तर में विहार कर जैन धर्म का प्रचार –प्रसार किया। तत्पश्चात् 72 वर्ष की आयु में उन्हें मोक्ष की प्राप्ति हुई।

जैन धर्म के अनुयायिओं ने भगवान महावीर के उपदेशों का संकलन किया। जैन धर्म का आधार भूत दर्शन है– अहिंसा। जैन धर्म में निहित अहिंसा अति व्यापक है तथा इसका अभियोजन केवल मानव प्राणियों से ही नहीं अपितु इसका सम्बन्ध समस्त सजीव प्राणियों से है। जैसे– जानवर, पेड़–पौधे, कीट इत्यादि।

हजारों शताब्दियों पुराने जैन धार्मिक ग्रन्थों में विभिन्न प्रकार के सजीव, जैविक प्राणियों की विजातियों तथा उनके प्रति अहिंसक व्यवहार का विस्तृत वर्णन है। जीवन मृत्यु तथा पुनर्जन्म का अन्त होने, चक्र से मुक्ति अर्थात् मोक्ष प्राप्ति ही जैन धर्म का मुख्य उद्देश्य है। जीवन मुक्त को सिद्ध कहा गया है।

जैन मतानुसार मनुष्य स्वयम् अपने भविष्य का निर्माता है। प्रत्येक जिन ने प्रेम, घृणा, विषयवासना, दुःख, आसक्ति पर विजय प्राप्त की है। जिसके फलस्वरूप उनकी आत्मा समस्त कर्मों के बन्धनों से मुक्त होती है।

जैन दर्शन की तत्वमीमांसा :

अपने समय में प्रतिनिधि पुराणकार के रूप में विश्रुत आचार्य जिनसेन के आदिपुराण के आलोड़न करने से ज्ञात होता है कि वे एक महान् चिन्तनशील दार्शनिक थे। उन्होंने अपने पूर्व जैन दार्शनिक आचार्य कुन्दकुन्द, उमास्वामी, समन्तभद्र, सिद्धसेन, भट्टाकलंकदेव आदि की कृतियों का गहन अध्ययन तो किया ही था, इसके अलावा वात्स्यायन, कणाद, कपिल जैसे जैनेतर दार्शनिक ग्रन्थों का गंभीर अवगाहन किया था।

अन्य दार्शनिकों की तरह लोक, परलोक, आत्मा–परमात्मा आदि तत्वों के संबंध में मानस पटल में उद्भूत होने वाली जिज्ञासाओं का समाधान करना दर्शन का परम लक्ष्य मानकर आचार्यों, सर्वज्ञों, मुनियों और गणधरों के निर्दोष उपदेशों द्वारा उनकी व्याख्या प्रस्तुत की हैं। इसके अलावा परम तत्वों को जानने का उपाय, परम सुख का स्वरूप उसे प्राप्त करने का उपाय आदि का विवेचन भी आदिपुराण की तत्वमीमांसा में उल्लेखित किया है। मानव के आदर्श जीवन–यापन करने की पद्धति के द्वारा आत्मा के क्रमिक विकास और उसमें आने वाले बाधक तत्वों का निराकरण जितने प्रभावकारी ढंग से तत्वमीमांसा में किया गया है, उतना अन्यत्र नहीं मिलता।

आचार्य जिनसेन ने आदिपुराण में तत्व के एक से लेकर अनन्त भेद होने का उल्लेख किया है। तत्व शब्द अनेकार्थक है। आदि पुराण में तत्व शब्द का प्रयोग स्वरूप और पदार्थ के अर्थ में हुआ है। ये तत्व ही तत्वमीमांसा के चर हैं। जैन दर्शन में अन्तिम सत्ता एक विशिष्ट तत्व नहीं है। इस दृष्टिकोण से जैन दर्शन यथार्थवादी दर्शन है। इसी प्रकार किसी एक सत्ता के न मानने के फलस्वरूप इसे बहुतत्ववादी दर्शन भी कहा जा सकता है। इस प्रकार जैन दर्शन के प्रमुख रूप से सात तत्व या चर हैं–

1. जीव
2. अजीव
3. आस्रव
4. बन्ध
5. संवर
6. निर्जरा
7. मोक्ष

जीव :–

जिसमें चेतना गुण है, वह जीव है। जीव का असाधारण लक्षण चेतना है और वह चेतना जानने व देखने के रूप में है अर्थात् जो देखता है और जानता है, वह जीव है। ज्ञान–दर्शन जीव का गुण या स्वभाव है। कोई जीव बिना ज्ञान के नहीं होता है। सबसे कम प्रकट ज्ञान निगोद में अक्षर के अनन्तवें भाग के बराबर होता है और सबसे अधिक प्रकट ज्ञान अरहंत व सिद्व में होता है। जीव में चार या चार से अधिक प्राण होते हैं।

जैन दर्शन में जीव देखने–जानने वाला, अमूर्तिक, कर्ता, भोक्ता और अपने उत्थान–पतन के लियें स्वयं उत्तरदायी है। इनकी संख्या घटती–बढ़ती नहीं हैं। वह यद्यपि अमूर्तिक लेकिन कर्म से संयुक्त है। यह उर्ध्व स्वभाव वाला है। चूंकि यह जीव जीवित था, जीवित हैं और जीवित रहेगा, इसलिए इसे "जीव" कहते हैं। सिद्व भगवान भी अपनी पूर्व पर्याय में जीवित थें, वर्तमान में जीवित है और भविष्य में भी जीवित रहेंगें अतः वह भी जीव है। इन्हें हम मुक्त जीव कहते हैं।
मानव शरीर तो मूर्तिक है और वह पुद्गल है। इस शरीर के अन्दर जो चेतन पदार्थ है, वह जीव है। यह अमूर्तिक है। इस प्रकार मानव शरीर जीव का शरीर मात्र है, जीव नहीं है। समझाने मात्र हेतु मानव शरीर को जीव कह दिया जाता है। जीव के दो भेद है–

1- मुक्त जीव
2- संसारी जीव

1. मुक्त जीव :– जिन जीवों ने अपने आठों कर्मो का नाश कर दिया है और संसार भ्रमण से मुक्त हो गये हैं तथा जिनका जन्म–मरण अब पुनः नहीं होगा, वे मुक्त जीव हैं। जैसे–सिद्व। मुक्त जीवों के कोई भेद नहीं होते हैं, यें सभी समान गुण धर्म वाले होते हैं।
2. संसारी जीव :– जो जीव कर्मों से सहित हैं और अनादि काल से संसार में भ्रमण कर रहा है अर्थात संसार में पुनः पुनः जन्म–मरण को प्राप्त हो रहा है। वह संसारी जीव हैं। जैसे –मनुष्य ,देव, नारकी और तिर्यच।

अजर अमर यह आत्म तत्व है ध्रुव अक्षय अविनाशी। तन तो है पुद्गल परिवर्तन अध्रुव , क्षयी, विनाशी है।।
कुन्द–कुन्द स्वामी

2. अजीव द्रव्य :– जिसमें चेतना नहीं हो अर्थात् जिसमें जानने, देखने की शक्ति नहीं हो, वह अजीव द्रव्य है। इसमे कोई प्राण नहीं होते । यद्यपि अजीव द्रव्यों में देखने व जानने की शक्ति नहीं होती है, मगर इसका यह अर्थ नहीं है कि उनमें अन्य कोई गुण या शक्ति नहीं है क्योंकि गुणों व धर्मो से रहित कोई वस्तु होती ही नहीं है।
जैन आगम में अजीव द्रव्य के पांच भेद किये गये हैं।– पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ।
पुद्गल द्रव्य :–"पुद्गल" दो शब्दों से बना है। "पुद" का अर्थ है– पूर्ण होना या मिलना और "गल" का अर्थ है –गलना या बिछुड़ना। जो पूरण व गलन स्वभाव वाला है अथवा जिसका संयोग–वियोग हो सके वह पुद्गल है। जड़ द्रव्यों का संयोग भी हो सकता है और वियोग भी अर्थात् उन्हें जोड़कर बड़ा आकर दिया जा सकता है व उन्हें तोड़ कर छोटा भी किया जा सकता है।
पुद्गल गतिशील अर्थात् सक्रिय होता है। जगत में जो कुछ भी हमारे देखनें, छूनें, चखने व सूंधने में आता है वह सब पुद्गलों का पिण्ड है।
पुद्गल की पर्याय :–
इन्द्रियों के द्धारा हम जो कुछ भी छूते हैं, चखते हैं, सूंघते हैं और सुनते हैं वे सभी पुद्गल की पर्याय होती हैं। ये दस प्रकार की होती हैं :–

1. शब्द	2. संस्थान	3. आतप	
4. बन्ध	5. भेद	6. उद्योत	
7. सूक्ष्मता	8. अंधकार	9. स्थूलता	10. छाया

पूद्गल के गुण :–

पुद्गल में पाँच रुप, पाँच रस, दो गंध और आठ स्पर्श मिलाकर कुल बीस गुण होते हैं–

1. रुप–जो नेत्र इन्द्रियों से जाना जावे। ;काला, पीला आदिद्ध
2. रस–जो रसना इन्द्रियों से जाना जावे। ;खट्टा, मीठा आदिद्ध
3. गंध–जो घ्राण इन्द्रियों जाना जावे। ;सुगंध, दुर्गन्धद्ध
4. स्पर्श–जो स्पर्शन इन्द्रिय से जाना जावे। ;ठंडा, गरम आदिद्ध

पुद्गल के भेद :– पुद्गल के दो भेद हैं –
1. अणु पुद्गल–पुद्गल द्रव्य का सबसे छोटा आकार अणु होता है। इसके आदि, मध्य व अंत नहीं होता है। इसके टुकड़े नहीं किये जा सकते हैं।
2. स्कन्ध पुद्गल– दो या दो से अधिक पुद्गलों के परस्पर मिलने को स्कन्ध कहते हैं।

धर्म द्रव्य :–

जो द्रव्य स्वयं चलते हुये जीव व पुद्गल के गमन में उदासीन रूप से सहायक हो, वह धर्म द्रव्य है। जीव व पुद्गल को चलने की प्रेरणा धर्म द्रव्य नहीं देता है, अपितु जब वे चलते हैं तो उदासीन रूप से मदद अवश्य करता है। जैसे जल मछलियों के तैरने मे सहायक है अथवा पतंग को उड़ने में हवा सहायक है। यदि यह द्रव्य नही हो तो हम चल ही नहीं सकेंगें। कोई भी पदार्थ शून्य में गमन नहीं कर सकता है। किसी भी क्रिया के लिए माध्यम की आवश्यकता होती है। जैन धर्म के अनुसार इस माध्यम को धर्म द्रव्य कहते है। यह द्रव्य अन्य किसी द्रव्य से प्रभावित नहीं होता है। क`वल जीवन व पुद्गल द्रव्य ही एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।
यह धर्म द्रव्य समूचे लोक में तिल में तेल की तरह व्याप्त है, मगर ऑखों से दिखाई नहीं देता है। यह अचेतन है और इसका कोई रूप भी नहीं है अर्थात अरूपी है। यह न तो चलता है और न ही फैलता या सिकुड़ता है।

आज के वैज्ञानिकों ने जिस पदार्थ को ईथर नाम दिया है, वह जैन आगम का धर्म द्रव्य है । (यहां धर्म शब्द का उपयोग पुण्य के अर्थ में नही है, अपितु यह एक द्रव्य है।)

अधर्म द्रव्य :–

जो द्रव्य स्वयं ठहरते हुए अन्य जीव या पुद्गल को ठहरने में उदासीन रूप से सहायक हैं वह अधर्म द्रव्य हैं। अन्य जीव व पुद्गल को ठहरने की प्रेरणा अधर्म द्रव्य नही देता है, अपितु जब वे ठहरते हैं तो उनकी सहायता अवश्य करता है। जैसे वृक्ष की छाया यात्री को ठहरने में सहायक होती है। यदि यह द्रव्य नहीं हो तो हम ठहर नहीं सकेगें। यह अधर्म द्रव्य समस्त लोक में तिल में तेल की तरह व्याप्त है, मगर आँखो से दिखाई नहीं देता है। यह भी अचेतन और अरूपी है। यह न तो चलता है, न सिकुड़ता है और न ही फैलता है। (यहा अधर्म शब्द का उपयोग पाप के अर्थ में नहीं है, अपितु यह एक द्रव्य है।)

आकाश :–

आकाश का अर्थ है अवकाश देना। सामान्य भाषा में नीले आसमान को आकाश ेालद्ध कहते हैं। मगर जैन आगम में आकाश का अर्थ वह द्रव्य है जो अन्य द्रव्यों को स्थान देता है। जीव, अजीव, अधर्म, काल तथा पुद्गलों को अपनी–अपनी स्थिति के लिए जो स्थान दे वही आकाश है। इसे लोकाकाश भी कहते हैं। जहाँ इन द्रव्यों के रहने का स्थान न हो वह अलोकाकाश है। लोकाकाश में असंख्य और अलोकाकाश में अनन्त प्रदेश हैं। आकाश द्रव्य सब दिशाओं में अनन्त तक व्याप्त है। इसका कहीं अन्त नही है, अतः इसे व्यापक कहा जाता है। इस आकाश द्रव्य में ही जीव, पुद्गल, वायु, अग्नि, पृथ्वी आदि सभी द्रव्य रहते हैं। यह स्पर्श रहित तथा क्रिया रहित है। यदि यह द्रव्य नहीं हो तो किसी भी वस्तु आदि को ठहरने हेतु जगह नहीं मिलती। इसके दो प्रकार हैं–

1. लोकाकाश–लोक के जितने भाग में छहों द्रव्य पाये जाते हैं वह लोकाकाश हैं।
2. अलोकाकाश–लोक के जितने भाग में केवल एक आकाश द्रव्य पाया जाता है, वह अलोकाकाश है। लोकाकाश के बाहर जो अनन्त आकाश है, वही अलोकाकाश है।

काल :–

जो सभी द्रव्यों के परिणमन ;परिवर्तनद्ध में सहकारी है, वह काल द्रव्य है। वस्तु के परिवर्तन में यह द्रव्य सहायक है। यह परिवर्तन स्वाभाविक है और इसे रोका नहीं जा सकता है। सभी पदार्थ अपने–अपने गुण पर्यायों द्धारा स्वय परिणमन को प्राप्त होते हैं, किन्तु बाहरी निमित्त के बिना यह परिणमन शक्ति व्यक्त नहीं होती है। जिस प्रकार कुम्हार के चक्र के फिरने में उसके नीचे लगी कील सहायक होती है उसी प्रकार काल द्रव्य भी सहायक हैं, बिना कील के चक्र का घूमना संभव नहीं है। इसी प्रकार काल द्रव्य के बिना पदार्थो ं का परिणमन संभव नहीं है। अतः काल द्रव्य पदार्थ के परिणमन में सहायक है। काल द्रव्य उनका परिणमन बलात् नहीं करता है, अपितु सहकारी निमित्त हैं। यह अनादि अनन्त है, वर्तना ही इसका लक्षण है। काल द्रव्य सूक्ष्म परमाणु के बराबर हैं। इसके दो भेद हैं–

1. निश्चय काल– लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश पर अलग–अलग काल के अणु स्थित हैं इन कालाणुओं को ही निश्चय काल कहते हैं।
2. व्यवहार काल– आकाश में एक प्रदेश में स्थित पुद्गल का एक परमाणु मन्द गति से जितनी देर में उस प्रदेश से लगे हुये दूसरे प्रदेश में पहुंचता है, उसे समय कहते हैं। यह काल की सबसे छोटी इकाई है। और समयों के समूह को ही आवली, उच्छवास,–निःश्वास, प्राण कहते हैं और इसी से घड़ी, दिन, सप्ताह, पक्ष, माह, वर्ष बनते हैं। यह सब व्यवहार काल हैं।
3. आस्रव :–

आत्मा में कर्मों के आने को आस्रव तत्व कहते हैं। जैसे–नदी में नाव चलते समय किसी छिद्र में से पानी का नाव में आना। इसी प्रकार मिथ्या दर्शन, राग, द्वेष आदि भावों के कारण आत्म प्रदेशों में हलन चलन होने से कार्मण पुद्गल वर्गणा आत्मा में आते हैं। ऐसे पुद्गल कणों को कर्म नाम दिया जाता है और सामान्य कथन में इन्हें ही कर्म कहते हैं। आस्रव के दो भेद हैं–

1. भाव आस्रव– जिन शुभाशुभ भावों से कार्मण वर्गणायें कर्म रुप में परिणत होती हैं, उन्हें भाव आस्रव कहते हैं।
2. द्रव्य आस्रव– उन कार्मण वर्गणाओं का कर्म रुप परिणत हो जाना द्रव्य आस्रव हैं।

4. **बन्ध तत्व :–**

आये हुए कर्मों का आत्मा के साथ मिलकर एकमेक हो जाना बन्ध तत्व है। जिस प्रकार दूध में पानी मिलकर एकमेक हो जाता है उसी प्रकार आत्मा में कर्मों का मिलकर एकमेक हो जाना बन्ध तत्व है। पुद्गल की कार्मण वर्गणाओं को अपनी ओर खींचने की विशेष शक्ति जीव में होती है। जैसे–चुम्बक लोहे को अपनी ओर खींचती है। जीव की इस आकर्षण शक्ति का नाम योग यानि बन्ध है। बन्ध के दो प्रकार हैं–

1. भाव बन्ध– जीव के शुभ व अशुभ ;राग, द्वेष, क्रोध आदिद्ध परिणाम जिनसे कर्म बंधता है, वह भाव बन्ध है।
2. द्रव्य बन्ध– आत्मा के प्रदेशों और कर्म वर्गणाओं का मिलना द्रव्य बन्ध है।

5. संवर तत्व :–

आस्रव का निरोध अर्थात् आते हुये कर्मों का रूक जाना संवर तत्व है। दूसरे शब्दों में कर्मों को नहीं आने देना संवर तत्व हैं। जिन कारणों से कर्म का आस्रव होता है, यदि वे दूर कर दिये जावें तो कर्मों का आना रूक जावेगा। यही संवर है। यह दो प्रकार का होता है–

1. भाव संवर– आत्मा के जिन भावों ;व्रत, संयम, गुप्ति आदिद्ध से कर्मों का आना रुकता है, वह भाव संवर है।
2. द्रव्य संवर– जिन परिणामों सें पुद्गल कर्मों का आत्मा की ओर आकृष्ट होने की शक्ति का क्षय हो जाता है, वह द्रव्य संवर है।

6. निर्जरा तत्व :–

प्रत्येक कर्म के आत्मा के साथ बंधने के समय उसकी जो प्रकृति होती है, उसी के अनुसार आत्मा को भला बुरा फल देकर कर्म का आत्मा से झर जाना निर्जरा है। इस प्रकार आत्म प्रदेशों के साथ बंधे हुये कर्मों के अंशतः क्षय होने को निर्जरा कहते हैं। आत्मा का वह परिणाम जो निर्जरा के कारण है, वह भाव निर्जरा है, और बंधे हुये कर्मों का आंशिक निर्जरित होना द्रव्य निर्जरा है। निर्जरा के दो प्रकार हैं–

1. सविपाक निर्जरा– यथा काल अर्थात् क्रम से परिपाक काल आने पर जो शुभ–अशुभ फल देकर निवृत होते हैं, वह सविपाक निर्जरा है। जैसे–फल का पक कर डाली से गिर जाना।
2. अविपाक निर्जरा– बन्धे हुये कर्मों का उदय काल आने से पूर्व ही तप आदि द्धारा उदय में लाकर क्षय करना अविपाक निर्जरा है।

7. मोक्ष :–

आत्मा से समस्त कर्मों का पूर्ण रूपेण क्षय हो जाना अर्थात् आत्मा का सर्वथा शुद्ध हो जाना मोक्ष तत्व है। समस्त कर्मों से रहित आत्मा के स्वाभाविक अनन्त ज्ञान आदि गुण और अव्याबाध सुख रूप अवस्था उत्पन्न होती हैं। इसी का नाम मोक्ष है। इसके दो भेद हैं–

1. भाव मोक्ष– आत्मा के जिन भावों से सम्पूर्ण कर्म अलग होते हैं, वह भाव मोक्ष है।
2. द्रव्य मोक्ष–सम्पूर्ण कर्मों का आत्मा से छूट जाना द्रव्य मोक्ष हैं।

हेय, उपादेय, ज्ञेय तत्व :–जो छोड़ने योग्य है वह हेय है, जो ग्रहण किये जाने योग्य है वह उपादेय है और जो जानने योग्य है वह ज्ञेय है।

सातों तत्वों में आस्रव व बन्ध तत्व हेय है क्योंकि वे संसार भ्रमण के कारण हैं। संवर व निर्जरा तत्व उपादेय है क्योंकि वे संसार से मुक्ति का कारण हैं। जीव व अजीव तत्व ज्ञेय हैं और मोक्ष तत्व परम उपादेय है।

पदार्थ :–

जो जाना जावे या निश्चित किया जावे, उसे अर्थ या पदार्थ कहते हैं। इस विश्व में जो जानने में आने वाले पदार्थ हैं, वे समस्त द्रव्यमय, गुणमय और पर्यायमय हैं। मोक्ष मार्ग में जानने योग्य 9 पदार्थ है ।

– सात तत्व ;जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, व मोक्षद्ध
– पाप
– पुण्य

पाप :–

अशुभ कर्मों को पाप कहते हैं। आत्मा को जो पतित करे या शुभ से दूर रखे अर्थात् जिसके उदय से आत्मा को दुःखदायी सामग्री मिले, वह पाप है। जैसे–बीमारी होना, पुत्र आदि का मरना, धन चोरी होना आदि। ये सब पाप के उदय से ही समझना चाहिए। कषाय, सप्त व्यसन आदि बुरे कर्म करने से पाप का बन्ध होता है। पाप पांच प्रकार के होते हैं–

* – हिंसा
* –झूठ
* चेरी
* कुशील
* परिग्रह

पुण्य :–

शुभ कर्मों को पुण्य कहते हैं। जो आत्मा को पवित्र अर्थात् सुखी करें, अर्थात् जिसके उदय से जीव को सुख दायक व प्रिय वस्तुयें मिलें, वह पुण्य कहलाता है। जैसे–व्यापार में लाभ होना, पुत्र की उच्च पद पर नियुक्ति होना, आदि। ये सब पुण्य के उदय से ही समझना चाहिए। जीव दया करना, पूजा–दान आदि धार्मिक क्रियायें करने से पुण्य का बंध होता हे। पाप व पुण्य दोनो से कर्मों का आस्रव/बंध होता है, अतः ये संसार के कारण है। परन्तु जीव को सदा सत्कर्म करने का उपदेश भी दिया गया हैं जिससे पुण्य का संचय होता है जो परम्परा से मोक्ष का कारण होने से कथंचित इष्ट हैं।

जैन दर्शन और शिक्षा :

भारतीय चिंतनधारा में जैन दर्शन की पर्याप्त स्वतंत्रता दृष्टिगत होती है, जो वेदों की सत्ता को स्वीकार नहीं करता है। जैन–दर्शन की मान्यता है कि ''ईश्वर की अवधारणा के बिना इस ब्रहमांड के रहस्य को सुलझा ना और पूर्णतया प्राप्त कर लेना संभव है।''

शिक्षा से अभिप्राय :

जैन–दर्शन के अनुसार जो ज्ञान व्यक्ति को सद्जी वन की और प्रेरित करता है वही विद्या है। जो न चाहे सांसारिक हो अथवा धार्मिक अथवा व्यावसायिक, यदि वह व्यक्ति तथा समाज के लिए हितकारी है तो उसे शिक्षा का अंग माना जाएगा अन्यथा नहीं ।हीं वह सभी ज्ञान उपयोगी है, जो मनुष्य को सदचरित्र की और प्रेरित करे। जैन दर्शन में शिक्षा उदात्तजीवन हेतु एवं निर्वाण प्राप्ति हेतु सम्यक ज्ञान, सम्यक दर्शन एवं सम्यक् चरित्र की प्रक्रिया है।

जैन–दर्शन के अनुसार सम्यन्जान तो अध्ययन द्वारा अर्जित किया जा सकता है परंतु सम्यग्दर्शन का उदय तभी हो ता है, जब अजान तथा अकरणीय के प्रति विरक्ति होती है, जिसे जैन–दर्शन की शब्दावली में निर्जरा कहा गया है। सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक दर्शन का समाहार सम्यक्चरित्र में होना चाहिए। अहित कार्यों का निवारण तथा हित–कार्यों का आचरण सम्यक्चरित्र कहलाता है। ज्ञान और श्रद्धा की परिणति आचरण में होनी चाहिए जैन शिक्षा व्यक्ति को पांच महाव्रत, चार धर्म तथा तीन अनुशासन प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त यह शिक्षा मनुष्य को सामाजिक तथा व्यक्तिगत जीवन उचित व्यवहार करना सिखाती है।

शिक्षा के उद्देश्य :

उपर्युक्त चर्चा के आधार पर जैन–दर्शन के शिक्षा संबंधी उद्देश्यों को संक्षेप रूप में निम्न प्रकार से देखा जा सकता है ।

* सम्यक ज्ञान–प्रदान करना।
* व्यक्ति को सद्बुल्लियों से संयुक्त करना।
* व्यक्तित्व का समुचित विकास करना व्यक्ति का सामाजिक विकास करना।
* मोक्ष या निर्वाण प्राप्त करना ।

जगत् संबंधी व्याख्या जो जैनों के 'षद्रव्य निरूपण में मिलती है, उसमें वैज्ञानिकता एवं आध्यात्मिकता का उचित समन्वय दिखाई देता है। जगत् की यह व्याख्या एक और यथार्थता लिए हुए है तो दूसरी और आदर्श से रहित नहीं है। जैनदर्शन शिक्षा संबंधी पाठ्यक्रम में इस जगत का ठोस ज्ञान, जीवन को बेहतर बनाने के लिए, इसके रहस्यों का उद्घाटन करने के लिए तथा जीवन की सुविधाएँ जुटाने के लिए उपयोगी बताया गया है।

जैन–दर्शन में वनस्पति, मिट्टी, अग्नि, जल तथा वायु में भी जीव माना गया है तथा उनकी आंतरिक शारीरिक संरचना की कल्पना की गई है। उक्त तत्वों का अध्ययन भी शिक्षा क्रम का आवश्यक अंग है। काल अध्ययन तथा जीवन का अध्ययन करने हेतु क्रमशः इतिहास, समाज अध्ययन, कला, कौशल, व्यवसाय, वाणिज्य तथा धार्मिक, नैतिक, शारीरिक क्रियाएं और व्यवसाय संबंधी क्रियाएं जैन–पाठ्यचर्या में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। कहा जा सकता है कि जैन्स्पाठ्यचर्या का जीवन व समाज से गहरा संबंध है।

जैन–दर्शन में ज्ञान के पाच प्रकारों का वर्णन किया गया है। यथा –मति , श्रुति , अवधि, मनः पर्यव तथा कैवल्य

* मतिज्ञा न साधारण ज्ञान है जो इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होता है (अन्य भारतीय दर्शन में इसे प्रत्यक्ष' की सजा दी गई हैं)।
* श्रुतिज्ञा न अथवा शब्द ज्ञान वह है जो लक्षणों ,णों प्रती कों अथवा शब्दों के द्वारा प्राप्त होता है।
* देश और काल की परिधि को पार करके जो इंद्रियातीत ज्ञान प्राप्त होता है वह अवधि ज्ञान कहलाता है।
* मनः पर्यव ज्ञान की प्राप्ति के द्वारा हम अन्य व्यक्तियों के वर्तमान तथा अतीत, विचारों एवं मनोभावों को जान सकते हैं।

समस्या का औचित्य :

किसी भी समस्या को उद्घाटित या प्रस्तुत करने का अनुसंधान कर्त्ता के पास कोई न कोई ध्येय होता है जिसे औचित्य का नाम दिया जाता है। बिना औचित्य के समस्या प्रस्तुत करना न तो सार्थक है न ही युक्तिपूर्ण है । बिना किसी ठोस कारण के समस्या की प्रस्तुतीकरण ऐसा प्रतीत होता है बिना जल के मछली बिना श्रद्धा के भक्ति, बिना सहायक सामग्री के पाठ्योजना बेकार है। संयुक्त राष्ट्र संघ ;न्ण्छण्ण्द्ध ने शिक्षा को विश्व में स्थापित करने का महत्वपूर्ण माध्यम माना है साथ ही शान्ति शिक्षा को परिभाषित करते हुए व्याख्या की है । उससे संबंधित सभी गुणों जैसे अहिंसा, मैत्री, सहयोग, सहिष्णुता वसुधैव कुटुम्बकम सदाचार इत्यादि का वर्गीकरण किया है ।

सभी देशों में शान्ति स्थापित करने के लिए अलग–अलग तरीके अपनाये जाते है उसी प्रकार भारत में भी राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान प्रशिक्षण परिषद् ;छण्ब्ण्म्ण्त्ण्ज्द्ध और राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् ;छण्ब्ण्ज्ण्म्द्ध प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से विद्यालय तथा विश्वविद्यालय स्तर पर इसे पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया है।

जैन दर्शन की शिक्षा को उच्च शिक्षा व शिक्षक प्रशिक्षणों के पाठ्यक्रम में भी जोड़ा गया है शिक्षा के क्षेत्र में जिस सोच को लेकर हम आये थे वह हमें किसी भी रूप में पूर्ण होती प्रतीत नहीं हो रही । जब शोधकर्त्ता ने इस विषय में गहन चिंतन किया तब उसे प्रतीत हुआ कि क्यों न इसके लिए हमारे द्वारा अपने प्राचीन ग्रन्थों जिसमें धार्मिक मान्यताएँ, विश्वासों, श्रेष्ठ गुणों का भण्डारण है जो उच्च शिक्षा व शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की व्यवस्था से किसी न किसी रूप में जुड़े है । उनका अध्ययन किया जाए ।

समस्या कथन :

''शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की शिक्षा पर पड़ने वाले जैन दर्शन के प्रभाव का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अध्ययन''

शोध में प्रस्तुत उद्देश्य :

1. शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की शिक्षा पर पड़ने वाले जैन दर्शन के प्रभाव का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अध्ययन किया जायेगा।
2. जैन दर्शन शैक्षिक संदर्भ में अध्ययन किया जायेगा।
3. जैन दर्शन शिक्षक–शिक्षार्थी सम्बन्ध से सम्बन्धित मूल्यों का अध्ययन किया जायेगा ।
4. जैन दर्शन में निहित पाठ्यक्रम का अध्ययन किया जायेगा ।
5. जैन दर्शन में निहित शिक्षण विधियों का अध्ययन किया जायेगा।
6. जैन दर्शन में व्यक्तिगत मूल्यों का अध्ययन किया जायेगा ।

शोध विधि :

प्रस्तुत शोध में पाठ्यवस्तु व दार्शनिक शोध विधि का प्रयोग किया जायेगा ।

समस्या से उभरते हुए प्रश्न :–

जहॉ समस्या होती है उसके निस्तारण हेतु व्यक्ति के मन में कुछ प्रश्न भी उभरते है जिनका उत्तर वह प्राप्त करना चाहता है क्योंकि प्रश्नों के माध्यम से ही समस्या पूर्णरूप से प्रकट होती है । इसीलिए यहॉ कुछ प्रश्नों का उल्लेख किया है वे निम्न है।

प्र.1 जैन शिक्षा किन उद्देश्यों पर आधारित है ?

प्र.2 जैन शिक्षा शिक्षक की भूमिका को प्राप्त करने में किस प्रकार सहायक है ?

प्र.3 जैन शिक्षा में निहित शिक्षक–शिक्षार्थी सम्बन्ध का शिक्षा में क्या योगदान है ?

प्र.4 शैक्षिक पाठ्यक्रम प्राप्त करने में जैन शिक्षा का क्या महत्व है?

प्र.5 जैन दर्शन में प्रयुक्त शिक्षण विधियॉ कौन–कौनसी है ?

प्रस्तुत शोध का परिसीमांकन :

* प्रस्तुत शोध में दार्शनिक विधि व पाठ्यवस्तु विश्लेषण विधि का अध्ययन किया जायेगा ।
* प्रस्तुत शोध जैन दर्शन तक ही सीमित है ।
* प्रस्तुत शोध शैक्षिक पक्ष के साथ–साथ सामाजिक पक्ष का भी अध्ययन किया जायेगा।
* प्रस्तुत अध्ययन में व्यक्तिगत मूल्यों का अध्ययन किया जायेगा ।
* प्रस्तुत अध्ययन पाठ्यक्रम के उद्देश्यों पर आधारित किया जायेगा ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

* अग्रवाल, प्रो., वाई. पी. (2003). शिक्षा में अनुसन्धान. कोटा : पद्धतियॉ वर्धमान महा–विद्यालय. खुला विद्यालय.
* ओड, के. लक्ष्मी लाल. (2004). शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि
* जायसवाल, सीताराम. (2004) शिक्षा विज्ञान कोश. आगरा : साहित्य प्रकाशन, आगरा.
* जरारे, विजय. (2004) शोध प्रणाली मेरठ : ए. बी. डी. पब्लिशर्स.
* कमला, डॉ. कुलहरि (2016). शिक्षा का दर्शन. आस्था प्रकाशन. जयपुर.
* कपिल, एच. के. (2003). अनुसंधान विधियॉ. आगरा : भवन हाउस
* रीता, अरोड़ा. जयपुर : शिक्षा में नव चिंतन
* शर्मा, त्ण्छण् स्वरूप. (2008). उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा
* शुक्ल, चुन्नीलाल (2007). साहित्य भण्डार. मेरठ : सुभाष बाजार.
* सरीन, शरीकला एवं सरीन, अंजनी (2007). शैक्षिक अनुसंधान की विधियॉ आगरा : अग्रवाल पब्लिकेशन.

* सत्यनारायण, डॉ. शर्मा (2004). समकालीन भारत एवं शिक्षा. आस्था प्रकाशन. जयपुर

Websites

1. www.nesamkriti.com/essay-chapter/vedicconceptofeducation
2. www.hinduwebsite.com/upnishads.asp.
3. www.ncert.ac.in
4. www.google.com
5. shodganga.com